राजस्थान में जल संरक्षण की पुरातन विशिष्ट संरचनाएं आज भी प्रासंगिक

डी.डी. ओझा

गुरूकृपा, ब्रह्मपुरी, हजारी चबूतरा, जोधपुर

सारांश

जल की महत्ता पूर्व की अपेक्षा वर्तमान में कहीं अधिक बढ़ गयी है। इसका मुख्य कारण तीव्र जनसंख्या वृद्धि तथा उसकी विभिन्न मांगों की आपूर्ति हेतु जल की खपत में वृद्धि है। इसके अतिरिक्त द्रुतगति से हो रही शहरीकरण में वृद्धि तथा औद्योगिक क्रांति ने भी जल की मांग में बढ़ोतरी की है। आज किसी भी देश या राष्ट्र की कमोबेश राजनीति भी जल पर टिकी हुई है तथा विश्व में सुरक्षित एवं पर्याप्त जल के लिए हायतोबा मचा हुआ है। नदी जल के अनुपातिक बँटवारे के लिए एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से और एक ही राष्ट्र के विभिन्न राज्यों में जल के लिए परस्पर विवाद उभरते नजर आ रहे हैं। अतः इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि जल कितनी दुर्लभ वस्तु है। जल संचयन एवं प्रबंधन का चलन हमारे यहाँ सदियों पुराना है। हमारे वेदों में अनादिकाल से जल संचयन, जल संरक्षण तथा जल विज्ञान से संबंधित अन्यान्य विषयों पर संस्तुति की गई है।

भारत में भौगोलिक विविधता के अनुसार विभिन्न पारिस्थिकीय क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न प्रकार के पारम्परिक जल स्रोत एवं संरक्षण पद्धतियाँ मिलती है। यथा–राजस्थान में खड़ीन, कुंड, नाड़ी और बावड़ी, महाराष्ट्र में बंधारा और ताल, मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश में बंधी, बिहार में आहर और पइन, हिमाचल में कुहल, तमिलनाडु में इरी, केरल में सुरंगम, जम्मू क्षेत्र के कांडी इलाके के पोखर, कर्नाटक में कट्टा आदि पानी को सहेजने और एक से दूसरी जगह प्रवाहित करने के कुछ अति प्राचीन साधन थे, जो आज भी इस्तेमाल में हैं। पारम्परिक व्यवस्थाएँ उस क्षेत्र विशेष के पारितंत्र और संस्कृति की विशिष्ट देन होती है, जिनमें उनका विकास होता है। वे न केवल काल की कसौटी पर खरी उतरी है, वरन् उन्होंने स्थानीय जरूरतों को भी पर्यावरण से तालमेल रखते हुए पूरा किया है। आधुनिक व्यवस्थाएँ जहाँ पर्यावरण का दोहन करती है, उनके विपरीत ये प्राचीन व्यवस्थाएँ पारिस्थिकीय संरक्षण पर जोर देती है। इस आलेख में राजस्थान की जल संचयक की विशिष्ट संरचनाओं पर जानकारी प्रदान की जा रही है।

Abstract

The importance of water has increased multifold recently. The main reason for it is alarmingly increasing population and catering its need for various purposes. In addition to it rapid expansions in urbanization and industrial revolution have also added the problem of scarcity of water. In present era, water has become a point of discussion, attention and an agenda of global multilateral deliberations owing to the fact that availability of safe and adequate water has become a menace for the society. Therefore, it is quite imperative that water is becoming a scarce commodity. On the other hand over the centuries, it become the sacred commodity of the society and commended utmost reverence which is evident from vedic scriptures.

The water management traditions in India have developed over centuries in an ecologically sound manner. These were decentralized system, where the urban and rural communities played an active role in water management. Rain was considered as the main source of water. The different prevailing traditional water harvesting systems in our country are viz. Khadin, Kund, tanka, nadi & Baori in Rajasthan, Bandhara and Tal in Maharastra, Bandi in U.P. and M.P., Aahar and Pine in Bihar, Kuhal in Himachal, Erri in Tamil Nadu, Surgham in Kerala, Pokhar in J & K and Katta in Karnataka. In fact the traditional water harvesting systems are eco-cultural friendly system and still are in use in most of the states, whereas the recent system exploit the environment. In the present communication the traditional water harvesting systems of Rajasthan will be comprehensively discussed.

जल संचय का सिद्वान्त यह है कि वर्षा के पानी को स्थानीय आवश्यकताओं और भौगोलिक स्थितियों के हिसाब से संचित किया जाए। इस क्रम में भू जल का भंडार भी भरता है। जल संचयन की पारम्परिक प्रणालियों से लोगों की घरेलू और सिंचाई संबंधी जरूरतें पूरी होती रही हैं। उपलब्ध ऐतिहासिक और पुरातात्विक प्रमाणों से विदित होता है कि ईसा पूर्व चौथी शताब्दी से ही देश के कई क्षेत्रों में छोटे–छोटे समुदाय जल संचय और वितरण की कारगर व्यवस्था करते रहे हैं। नंद के शासन में (363–321 ईसा पूर्व) शासकों ने नहरें और समुदाय पर निर्भर सिंचाई प्रणालियां बनाई। मध्य भारत के गौड़ शासकों ने सिंचाई और जल आपूर्ति की न केवल बेहतर प्रणालियाँ बनाई, वरन् उनके रखरखाव के लिए आवष्यक सामाजिक और प्रशासनिक व्यवस्थाएँ भी विकसित की थी।

सभी पारम्परिक प्रणालियाँ छोटी नहीं थी। शहरों की जरूरतों को पूरा करने के लिए बड़ी प्रणालियाँ भी बनाई जाती थीं। परंतु छोटी प्रणालियों के साथ इनका तालमेल भी होता था, जैसा कि चोल काल (930–1200 ई.) और मध्यकालीन विजयनगर में दिखता है। ये प्रणालियाँ इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि सूखे या अकाल के लंबे दौर में भी इन्होंने समुदायों को जीवनदान दिया है।

आज लोग आधुनिक प्रणाली चाहते हैं, क्योंकि जब घर में नल खोलते ही पानी आ सकता है तो कुएं या तालाब से पानी लाने के लिए पैदल चलना कौन चाहेगा। इसी तरह सिंचाई के लिए पम्पसेट का बटन दबाते ही या बांध का दरवाजा खोलते ही पानी पाना हर कोई चाहेगा। परंतु जब नल सूखता है और बांध में मिट्टी भरने लगती है और आधुनिक प्रणालियाँ नाकाम होने लगती हैं तब लोगों को पारम्परिक प्रणालियों की सुध आती है। हमारे देश का बड़ा हिस्सा ऐसा भी है जहाँ आधुनिक प्रणालियाँ भारी लागत के कारण पहुंच ही नहीं सकती। ऐसे हिस्से में लोग पीने के पानी और सिंचाई के लिए पारम्परिक प्रणालियों पर ही निर्भर हैं।

प्राचीन भारत में जल–चक्र को भली–भांति समझा जाता था तथा उनका माना था कि नदियों का जल सागर में मिलता है, वे सागर को सागर से जोड़ती हैं, मेघ वाष्प बनकर आकाश में छा जाते हैं और वर्शा करते हैं। हमारे भारत देश को जलवायुवीय एवं भौतिक विषेशताओं के आधार पर मुख्य रूप से पाँच भागों में विभक्त किया गया है। जिनमें वर्षा के वितरण एवं मात्रा के अनुसार विभिन्न प्रकार की जल संरक्षण प्रणालियाँ विकसित कर रखी है। राजस्थान की जल संरक्षण की पुरातन विशिष्ट संरचनाएं आज भी प्रासंगिक है।

राजस्थान में जल संग्रहण की परम्परागत विधियाँ

सम्पूर्ण भारत में राजस्थान की जल संचयन विधियाँ अपनी अलग विशेषता रखती है तथा जिनके विकास में ऐतिहासिक तत्वों के साथ ही विविध भौगोलिक कारकों का भी प्रभाव प्रमुख है। वस्तुतः राजस्थान एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ वर्ष भर बहने वाली नदियाँ नहीं है। यहाँ पानी से संबंधित समस्याएं कम तथा अनियमित वर्षा और नदियों में अपर्याप्त पानी को लेकर उत्पन्न होती हैं। यहाँ प्रकृति तथा संस्कृति एक दूसरे से जुड़ी हुई है।

राजस्थान में स्थापत्य कला के प्रेमी राजा–महाराजाओं तथा सेठ–साहूकारों ने अपने पूर्वजों की स्मृति में अथवा अपने नाम को चिरस्थाई बनाने के उद्देश्य से इस प्रदेश के विभिन्न भागों में कलात्मक बावड़ियों, कुओं, तालाबों, झालरों एवं कुडों का निर्माण करवाया। राजस्थान में पानी के कई पारम्परिक स्रोत हैं, जैसे–नाड़ी, तालाब, जोहड़, बंधा, सागर, समंद एवं सरोवर। कुएं पानी के एक और महत्वपूर्ण स्रोत है। राजस्थान में कई प्रकार के कुएं पाए जाते है। इसके अतिरिक्त बावड़ी या झालरा भी है जिनको धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है।

राजस्थान में जल संचयन की परम्परागत विधियाँ उच्च स्तर की हैं। इनके विकास में राज्य की धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं का प्रमुख योगदान है। यहाँ प्रकृति एवं संस्कृति परस्पर एक दूसरे से ससाजित रही हैं। राजस्थान के किले तो वैसे भी प्रसिद्ध है पर इनका जल प्रबंध विशेषरूप से देखने योग्य है तथा शिक्षाप्रद भी है। जल संचयन की परम्परा यहाँ के सामाजिक ढांचे से जुड़ी हुई है तथा जल के प्रति धार्मिक दृष्टिकोण के कारण ही प्राकृतिक जल स्रोतों को पूजा जाता है। यहाँ के स्थानीय लोगों ने ही पानी के कृत्रिम स्रोतों का निर्माण किया है। इन्होंने पानी की प्रत्येक बूंद का व्यवस्थित उपयोग करने वाली लोक कथाएं एवं आस्थाएं विकसित की है, जिनके आधार पर ही प्राकृतिक जल का संचय करके कठिन परिस्थितियों वाले जीवन को सहज बनाया है। पश्चिमी राजस्थान में जल के महत्व पर निम्न पंक्तियाँ लिखी गई हैं जिसमें पानी को घी से भी बढ़कर बताया गया है–

"घी ढुल्याँ म्हारो की नीं जासी ।
पानी ढुल्याँ म्हारो जी बले ।।"

जल के उचित प्रबंधन हेतु पश्चिमी राजस्थान में आज भी सुदूर के ग्रामीण क्षेत्रों में पराती में चौकी रखकर उस पर बैठकर स्नान करते हैं जिससे शेष बचा पानी अन्य उपयोग में आ सके।

राजस्थान में जल संचयन की निम्नांकित संरचनाएँ महत्वपूर्ण हैं।

(i) तालाब

वर्षा के पानी को संचित करने का तालाब प्रमुख स्रोत रहा है। प्राचीन समय में बने इन तालाबों में अनेक प्रकार की कलाकृतियाँ बनी हुई है। इन्हें हर प्रकार से रमणीय एवं दर्शनीय स्थल के रूप में विकसित किया जाता है। इनमें अनेक प्रकार के भित्ती चित्र इनके बरामदों, तिबारों आदि में बनाये जाते है। कुछ तालाबों की तलहटी के समीप कुआं बनाते थे जिन्हें "बेरी" कहते हैं। तालाबों की समुचित देखभाल की जाती थी जिसकी जिम्मेदारी समाज पर होती थी। धार्मिक भावना से बने तालाबों का रख–रखाव अच्छा हुआ है, परंतु आज तालाबों की भी स्थिति दयनीय हो चुकी है तथा इन पर तत्काल ध्यान देने की जरूरत है। आज राजस्थान के कई ग्रामीण क्षेत्रों में जलाभाव के कारण ग्रामीण महिलाओं को बहुत दूर से पानी लाना पड़ता है जिसके कारण उनका अधिकांश समय जल व्यवस्था में ही चला जाता है।

(ii) झीलें

राजस्थान में जल का परम्परागत ढंग से सर्वाधिक संचय झीलों में होता है। यहाँ पर विष्व प्रसिद्ध झीलें स्थित है जिनके निर्माण में राजा–महाराजाओं, बनजारों एवं आम जनता का सम्मिलित योगदान रहा है। झीलों की विषाल क्षमता का अनुमान जोधपुर की लालसागर (सन् 1932) और उम्मेदसागर (सन् 1931) झीलों की विशालता से लगाया जा सकता है, जिनमें 70 करोड़ घन फीट जल संचय रहता है जो कि 8 लाख लोगों के लिए 8 माह तक पर्याप्त है। इसी प्रकार उदयपुर में विश्व प्रसिद्ध झीलों–जयसमंद, उदयसागर, फतहसागर, राजसमंद एवं पिछोला में काफी मात्रा में जल संचय होता रहता है। इन तालाबों से सिंचाई के लिए भी जल का उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त इनका पानी रिसकर बावड़ियों में भी पहुँचता है जहाँ से इसका उपयोग पेयजल के रूप में करते हैं।

(iii) नाड़ी

नाड़ी एक प्रकार का पोखर होता है, जिसमें वर्षा जल संचित होता है। इसका आगोर विशिष्ट प्रकार का नहीं होता है। राजस्थान में सर्वप्रथम पक्की नाड़ी का निर्माण का विवरण सन् 1520 में मिलता है, जब राव जोधाजी ने जोधपुर के निकट एक नाड़ी बनवाई थी। पश्चिमी राजस्थान में लगभग प्रत्येक गांव में कम से कम एक नाड़ी अवश्य मिलती है। नाड़ी बनवाते समय वर्षा के पानी की मात्रा एवं जलग्रहण क्षेत्र को ध्यान में रखकर ही जगह का चुनाव करते हैं। रेतीले मैदानी क्षेत्रों नाड़ियाँ 3 से 12 मीटर गहरी होती हैं। इनका जलग्रहण क्षेत्र (आगोर) भी बड़ा होता है। यहाँ पर रिसाव कम होने के कारण इनका पानी सात से दस महिने तक चलता है।

जलोढ मृदा वाले क्षेत्रों की नाड़ी बड़ी होती है। केन्द्रीय रूक्ष अनुसंधान संस्थान, जोधपुर के एक सर्वेक्षण के अनुसार नागौर, बाड़मेर एवं जैसलमेर में पानी की कुल आवश्यकता में से 37.06 प्रतिशत नाड़ियों द्वारा पूरी की जाती है। वस्तुतः नाड़ी भू सतह पर बना प्राकृतिक गड्डा होता है, जिसमें वर्षा जल आकर संग्रहित होता रहता है। कुछ समय पश्चात् इसमें गाद भरने से जल संचय क्षमता घट जाती है जिसके लिए इसकी समय–समय पर खुदाई की जाती है। कई छोटी नाड़ियों की जल क्षमता बढ़ाने हेतु एक या दो ओर से पक्की दीवार बना दी जाती है। नाड़ी के जल में गुणवत्ता की समस्या बनी रहती है क्योंकि मवेशी भी पानी उसी से पी लेते है। आज अधिकांश नाड़ियाँ प्रदूषण एवं गाद जमा होने के कारण अपना वास्तविक स्वरूप खोती जा रही है। अतः इस दिशा में ध्यान देने की आवश्यकता है।

(iv) बावड़ी

राजस्थान में कुआं व सरोवर की तरह ही वापी (बावड़ी) निर्माण की परम्परा अति प्राचीन है। यहाँ पर हड़प्पा युग की संस्कृति में बावड़ियाँ बनाई जाती थी। प्राचीन शिलालेखों में बावड़ी निर्माण का उल्लेख प्रथम शताब्दी से मिलता है। प्राचीनकाल में अधिकांश बावड़ियाँ मंदिरों के सहारे बनी है। बावड़ियाँ और सरोवर प्राचीनकाल से ही पीने के पानी एवं सिंचाई के महत्वपूर्ण जलस्रोत रहे हैं। आज की तरह जब घरों में नल अथवा सार्वजनिक हैंडपंप नहीं थे तो गृहणियाँ प्रातः काल एवं सांयकाल कुऐं, बावड़ी व सरोवर से ही पीने का पानी लेने जाया करती थी। बावड़ी का जलभृत लवणीय नहीं होता है। अतः इनका निर्माण बड़े ही वैज्ञानिक तरीके से किया जाता है।

राजस्थान में बावड़ी निर्माण का प्रमुख उद्देश्य वर्षा जल का संचय रहा है। आरंभ में ऐसी भी बावड़ियाँ हुआ करती थीं जिनमें आवासीय व्यवस्था भी हुआ करती थी। आज के प्रदूषण युग में काफी प्राचीन बावड़ियों की दशा अच्छी नहीं है। यदि समय रहते इनका जीर्णोद्धार किया जाय तो ये बावड़ियाँ जल संकट का समाधान बन सकती है।

(v) झालरा

झालराओं का कोई जल स्रोत नहीं होता है। ये अपने से ऊँचाई पर स्थित तालाबें या झीलों के रिसाव से पानी प्राप्त करते हैं। इनका स्वंय का कोई आगोर नहीं होता है। झालराओं का पानी पीने के लिए उपयोग में नहीं आता है वरन् इनका जल धार्मिक रीति–रिवाजों को पूर्ण करने, सामूहिक स्नान एवं अन्य कार्यो हेतु उपयोग में आता है। अधिकांश झालराओं का आकार आयताकार होता है, जिनके तीन ओर सीढ़ियाँ बनी होती है। अधिकांश झालराओं का वास्तुशिल्प अद्भुत प्रकार का होता है। जल संचय की दृष्टि से ये आपना विशिष्ट महत्व रखते है। आज इनके संरक्षण के प्रति तत्काल कदम उठाने की आवश्यकता है।

(vi) टोबा

नाड़ी के समान आकृतिवाला जल संग्रह केन्द्र टोबा कहलाता है। इसका आगोर नाड़ी से अधिक गहरा होता है। इस प्रकार थार के रेगिस्तान में टोबा एक महत्वपूर्ण पारम्परिक स्रोत है। सघन संरचना वाली भूमि जिसमें पानी का रिसाव कम होता है, टोबा निर्माण हेतु उपयुक्त स्थान माना जाता है। इसका ढलान नीचे की ओर होना चाहिए। इसके जल का उपयोग दोनों मानव एवं मवेशियों द्वारा किया जाता है। टोबा के आस–पास नमी होने के

कारण प्राकृतिक घास उग जाती है जिसे जानवर चरते हैं। मानसून के आगमन के साथ ही लोग सामूहिक रूप में टोबा के पास ढाणी बनाकर रहने लगते हैं। सामान्यतया टोबाओं में 7–8 माह तक पानी ठहरता है। राजस्थान में प्रत्येक गांव में जाति एवं समुदाय विशेष द्वारा पशुओं एवं जनसंख्या के हिसाब से टोबा बनाये जाते हैं। एक टोबे के जल का उपयोग उसकी जल संचयन क्षमता के अनुसार एक से बीस परिवार कर सकते हैं। इसके संरक्षण का कार्य विशिष्ट प्रकार से किया जाता है तथा खुदाई करके पायतान को बढ़ाया जाता है।

(vii) कुंडी या टांका

कुंडी राजस्थान के रेतीले ग्रामीण क्षेत्रों में वर्षा के जल को संग्रहित करने की महत्वपूर्ण परम्परागत प्रणाली है, इसे कुंड भी कहते है। इसमें संग्रहित जल का मुख्य उपयोग पेयजल के लिए करते हैं। यह एक प्रकार का सूक्ष्म भूमिगत सरोवर होता है जिसको ऊपर से ढक दिया जाता है। कहीं–कहीं पर संदूषण को रोकने हेतु इस जल स्रोत के ढक्कन पर ताला भी लगा दिया जाता है। इसका निर्माण संपूर्ण मरूभूमि में किया जाता है, क्योंकि मरूस्थल का अधिकांश भू जल लवणीयता से ग्रस्त होने के कारण पेयरूप में स्वीकार्य नहीं है। अतः वर्षा के जल का संग्रह इन कुंडों में किया जाता है।

कुंड का निर्माण सभी जगह होता है। पहाड़ पर बने किलों में, पहाड़ की तलहटी में, घर की छत पर, आंगन में, मंदिर में, गांव में, गांव के बाहर बिलग क्षेत्रों में तथा खेत आदि में। इसका निर्माण सार्वजनिक रूप में लोगों द्वारा, सरकार द्वारा तथा निजी निर्माण स्वंय व्यक्ति या परिवार विशेष द्वारा करवाया जाता है। निजी कुंड का निर्माण घर के आंगन या चबूतरों पर किया जाता है, जबकि सामुदायिक कुंडियाँ पंचायत भूमि में बनाई जाती है जिसका उपयोग गांव वाले करते हैं। गांवों में इन बड़े कुंडों के पास दो खुले हौज भी बनाते है जिनकी ऊँचाई भी कम रखी जाती है। इनका उद्देश्य आस–पास गुजरने वाले भेड़, बकरियों, ऊंट एवं गायों आदि के लिए पेयजल व्यवस्था के लिए होता है।

कुंड या कुंडी का निर्माण जगह के अनुसार किया जाता है। आंगन या चबूतरे का ढाल जिस ओर होता है उसके निचले भाग में कुंडिया बनाई जाती है। जिन्हें गार–चूने से लीप–पोतकर रखते हैं। वर्तमान में कुंड की दीवारों पर सीमेंट का प्लास्टर किया जाता है। जिस आंगन में वर्षा के पानी को एकत्रित किया जाता है, वह आगोरया पायतान कहलाता है। इसको वर्ष पर्यन्त साफ–सुथरा रखा जाता है। पायतान से बढकर पानी इंडु (सुराखों) से होता हुआ अंदर प्रवेश करता है। इन इंडुओं के मुहाने पर जाली लगी होती है, जिससे कचरा एवं वृक्षों की पत्तियाँ अंदर प्रवेश न कर सके।

कुंड या कुंडी 40 से 60 फीट तक गहरी होती है। इसमें संदूशण रोकने हेतु सफाई का बहुत ध्यान रखा जाता है तथा पानी भी खींचकर निकाला जाता है। जोधपुर स्थित केन्द्रीय रूक्ष अनुसंधान संरचना के वैज्ञानिकों ने ग्रामीण क्षेत्रों में जल संग्रहण हेतु विशेष प्रकार के टांकों का निर्माण किया है जो कम लागत पर सुरक्षित जल प्रदान कर सकते हैं।

पारम्परिक जल स्रोतों का गुणवत्ता अध्ययन

लेखक ने मरूस्थल के विभिन्न क्षेत्रों से भिन्न–भिन्न पारम्परिक जल स्रोतों (कुंड, तालाब, बावड़ी, झालरा) के प्रतिनिधी जल नमूनों को एकत्रित कर उनका भौत–रासायनिक एवं जैविक गुणों हेतु विश्लेषण किया। अध्ययन के दौरान विदित हुआ कि कुंड में संग्रहित जल सभी कार्यो हेतु उपयुक्त पाया गया क्योंकि पेयजल निर्धारण हेतु सभी प्राचल (कुल घुलनशील, ठोस, नाइट्रेट एवं फ्लोराइड) इसमें निर्धारित परास में ही पाये गये, जबकि अन्य स्रोतों में कुछ प्राचलों का मान अधिक पाया गया। इन क्षेत्रों का अवलोकन करने पर ज्ञात हुआ कि अधिकांश स्थानों पर बावड़ियों के ऊपर वृक्ष थे जिनमें पत्तियाँ आदि गिरने से जैविक नाइट्रेट में वृद्धि प्रेक्षित की गई तथा अन्य स्थानों पर इन जल स्रोतों पर मानवीय कृत्यों द्वारा भी संदूषण की समस्या देखी गई। मुख्यतया ये कृत्य अतिक्रमण, दूकान एवं मकानों के कचरे डालने के रूप में देखे गये। इन संदूषित जल स्रोतों में घुलनशील ऑक्सीजन तथा जैव ऑक्सीजन मांग का मान भी अधिक पाया गया। जिसके कारण हुई अत्यधिक शैवाल वृद्धि ने जलीय जीवों के जीवन को भी खतरे में डाल दिया है। अतः जो पारम्परिक जल स्रोत अतीत में पेयजल आपूर्ति में सक्षम थे, आज प्रदूषण के शिकार हो रहे हैं।

(viii) खडीन

खड़ीन जल संरक्षण की पारम्परिक विधियों में बहुउद्देशीय व्यवस्था है। यह परम्परागत तकनीकी ज्ञान पर आधारित होती है। इसका सर्वप्रथम विकास 15वी सदी में जैसलमेर के पालीवाल ब्राह्मणों द्वारा किया गया था। खड़ीन मिट्टी का बना बांधनुमा अस्थाई तालाब होता है, जो किसी ढाल वाली भूमि के नीचे निर्मित करते है। इसके दो तरफ मिट्टी की पाल उठाकर तीसरी ओर पत्थर की मजबूत चादर लगाई जाती है। खड़ीन की यह पाल धोरा कहलाती है। धोरे की लम्बाई पानी की आवक के हिसाब से कम ज्यादा होती है। पानी की मात्रा अधिक होने पर

यह खड़ीन भरकर अगले खड़ीन में प्रवेश कर जाता है। इस प्रकार यह पानी धीरे–धीरे सूखकर खड़ीन की भूमि में नमी छोड़ता रहता है जिसके बल पर फसलें उगाई जाती है।

खड़ीन तकनीकी द्वारा बंजर भूमि को भी कृशि योग्य बनाया जा सकता है। खड़ीनों में पानी को निम्न ढालू स्थानों पर एकत्रित करके फसलें ली जाती है। जिस स्थान पर पानी एकत्रित होता है उसे खड़ीन व इसे रोकने वाले बांध को खड़ीन बांध कहते हैं। खड़ीनों द्वारा शुष्क प्रदेशों में बिना अधिक परिश्रन के फसलें ली जा सकती है। क्योंकि इसमें न तो अधिक निराई–गुड़ाई की आवश्यकता होती है, न ही रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों की। इन खड़ीनों के पास कुआं भी बनाया जाता है, जिसमें खड़ीन रिसकर पानी आता रहता है, जिसका उपयोग पीने के लिए किया जाता है। आज अनेक प्राचीन खड़ीने उपेक्षित है। इनके वास्तविक महत्व को मानकर राजस्थान सरकार ने नई खड़ीने बनवाने की योजना बनाई है।

(ix) एनिकट

यह एक पक्की संरचना होती है जो स्थानीय जल ग्रहण क्षेत्र के जल को रोकती है। तथा समुचित उपयोग हेतु उसका भंडारण करती है। यह अपवाह जल के संग्रहण एवं पुनर्भरण के अन्य प्रकार में नाले अथवा प्राकृतिक जल निकास मार्ग के आर–पार बनाये जाते है, जिसे राजस्थान में साधारणतया एनिकट कहते है। कुछ अन्य प्रदेशों में इसे चैक डैम भी कहा जाता है। संरचना के पीछे रोके गए जल को उत्तोलक सिंचाई के रूप में तथा मनुष्यों, पालतू पशुओं और जंगली जानवरों के पेयजल हेतु उपयोग में लाये जा सकता है। ये एनिकट निचले क्षेत्रों में अवस्थित कुओं के पुनर्भरण में भी योगदान करते है। एनिकट बहुत लम्बे समय से प्रचलन में हैं तथा बहुत ही लोकप्रिय है।

वस्तुतः एनिकट अर्धषुश्क क्षेत्रों में अधिक बनाए जाते है। क्योंकि इनको आर्थिक दृष्टि से प्रभावी बनाने हेतु एक निश्चित मात्रा में वर्षा की आवश्यकता होती है। इन संरचनाओं की संकल्पनाओं में जलीय एवं भूगर्भिक रचना, हाइड्रोलिक अभिकल्पना तथा बनावट के अभिकल्पना स्थिरांक की महती भूमिका होती है।

References

1. D.D. Ozha, Jal Prabandhan Pushkat Surbhi Publication, Jaipur 2018.
2. D.D. Ozha and F.M. Golani: Rajasthan meh jal bachat ke anokhe tarika . Vigyan Garima Sindhu Patrika. Cstt. Pub, 82, (2014)
3. Traditional Wisdom in water management, The Indian Council of water and culture publication, Aurangabad, 2005.
4. Aaj bhe prasangik hein puritan jal sangrak shank e shrota, Dr. P.C. Purohit Marudharaa Publication Jod. 2008.